[Conference- Innovation in Music & Dance :January,2015] ISSN- 2350-0530(O) 2394-3629(P)
DOI: https://doi.org/10.29121/granthaalayah.v3.i1SE.2015.3451

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

विज्ञापन की सृष्टि : संगीत की दृष्टि
(दृश्य–श्रव्य माध्यम के संदर्भ में)

डॉ. सुषमा श्रीवास्तव
सहायक प्राध्यापक – हिंदी
शा. महारानी लक्ष्मीबाई स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय, किला भवन, इन्दौर

संचार को जीवन का पर्याय कहा जा सकता है हमारे शरीर की लाखों कोशिकाएँ आपस में लगातार संचार करती रहती हैं। जिस क्षण यह प्रक्रिया बंद हो जाती है उसी क्षण हम मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। जीवन का दूसरा नाम संचार संलग्नता है, संचार–शून्यता मृत्यु का द्योतक है।

वर्तमान परिवेश में संचार का व्यापक स्तर है 'जनसंचार' अर्थात जब हम किसी भाव या जानकारी को दूसरों तक पहुँचाते हैं और यह प्रक्रिया सामूहिक पैमाने पर होती है तो इसे 'जनसंचार' कहते हैं। जनसंचार में प्रेषक तथा बड़ी संख्या में ग्रहणकर्ता के बीच एक साथ संपर्क स्थापित होता है एवं इस बात की संभावना बनी रहती है कि सूचना या जानकारी प्राप्त करने वाले लोगों में से अधिकांश में कुछ न कुछ प्रतिक्रिया अवश्य उत्पन्न होगी।

जनसंचार माध्यमों में सबसे सशक्त माध्यम है 'दृश्य–श्रव्य माध्यम। दूरदर्शन के विभिन्न चैनलों के माध्यम से किया जाने वाला जनसंचार मानव जाति पर व्यापक प्रभाव डालता है। यह दृश्य–श्रव्य संचार माध्यम है।इसमें हम देखने व सुनने का कार्य एक साथ करते है। इस माध्यम की विशेषता यह है कि इसमें सूचनाओं या विचारों का एक तरफा संचार होता है। भूमंडलीकरण की शक्तियाँ इस संचार माध्यम के बिना खड़ी नहीं रह सकती इसमें जन 'उपभोक्ता' के रूप में विद्यमान होता है। उपभोक्तावादी संस्कृति में भद्रता और सामाजिक हैसियत को वस्तुओं से जोड़ा जाता है। दृश्य–श्रव्य माध्यम में मनोरंजन के द्वारा उपभोक्ता को आकर्षित कर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ अपने उत्पादों का विक्रय करती है उत्पादित वस्तुओं की माँग निरंतर बनी रहे अतः इसकी सूचना उपभोक्ता तक पहुँचाने के लिए ही विज्ञापन की प्रक्रिया का जन्म हुआ।

विज्ञापन का अर्थ है 'विशिष्ट ज्ञान'। किसी वस्तु या व्यक्ति के गुणों या उसकी उपलब्धियों को आम आदमी तक पहुँचाना विज्ञापन है।। विज्ञापन पूँजीवादी के उत्पादों चाहे वे वस्तु के रूप हों या विचारों के रूप में आम उपभोक्ता पर थोपने का कार्य करते हैं।
श्री जगदीष्वर चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'माध्यम साम्राज्यवाद' में विज्ञापन को 'पूँजीवाद की कुंजी' कहा है।

एफ. एंगेल्स ने 'दि इमेजेज ऑफ पावर' में लिखा है कि "विज्ञापन की यह खूबी है कि वह भविष्य के सपनों को जगाता है और बार–बार पुनरावृत्ति के द्वारा उन्हें सामाजिक विश्वास में बदल देता है। विज्ञापन पर विचार करते समय उसे सिर्फ बाजार तक सीमित करके नहीं देखना चाहिए। बाजार के अलावा सामाजिक एवं वैचारिक पक्ष भी होता है, जो अमूमन माध्यम विशेषज्ञों की नजर से ओझल हो जाता है इसी तरह जो माध्यम विशेषज्ञ सामाजिक – वैचारिक पक्ष को महत्वपूर्ण मानते हैं वे बाजार के पहलू की अनदेखी करते हैं। बाजार के संदर्भ में वे अनुमानों से कार्य चला लेते हैं।"

विज्ञापन का मुख्य कार्य होता है, 'उत्पाद के प्रति लोगों में रूचि जागृत करना।' यह कार्य आक्रमक प्रचार शैली के द्वारा दृश्य–श्रव्य माध्यम करता है। इसमें शब्द, दृश्य व संगीत/ध्वनि का संयोजन किया जाता है। अत्याधुनिक तकनीक के प्रयोग से संचार माध्यमों में वस्तुओं का संबंध संस्कृति से स्थापित कर दिया जाता है। शब्द उत्पादित वस्तु के बारे में सूचना देते हैं, विश्वास उत्पन्न करते हैं, दृश्य दमित इच्छाओं, भावनाओं को जागृत करते हैं तथा संगीत आकर्षण प्रवाह व स्मरण शक्ति में वृद्धि कर वस्तु खरीदने के लिए विवश करता है।

संगीत शारिरिक थकान दूर करने, मानसिक तनाव से मुक्ति प्रदान करने व आनंद उत्पन्न करने का कार्य करता है। भूमंडलीकरण के युग में संगीत का क्षेत्र विस्तृत हो रहा है। कला क्षेत्र के अतिरिक्त मनोरंजन, चिकित्सा, साहित्य, योग, शिक्षा आदि क्षेत्रों में भी संगीत के नित नवीन प्रयोग हो रहे हैं। संगीत का व्यावसायिक प्रयोग नवाचार है। विज्ञापनों में भी संगीत के द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया जा रहा है।

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

विज्ञापनों में भाषा बोली कम जाती है, बजती अधिक है। संगीत के माध्यम से विज्ञापन को आकर्षक, प्रभावी स्मरणीय, गतिशील व रूचिकर बनाया जाता है। विज्ञापित वस्तु के लक्ष्य वर्ग को दृष्टिगत रखकर संगीत के रूप का प्रयोग किया जाता है। भूमंडलीकरण में अंतर्मिश्रण का तत्व संजीवनी है अतः विज्ञापनों में भी भक्ति संगीत, फिल्मी संगीत, सुगम संगीत, शास्त्रीय संगीत, पाश्चात्य संगीत व लोकसंगीत का अंतर्मिश्रण निहित होता है।

जहाँ विज्ञापनों में पाश्चात्य संगीत के प्रयोग से बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ विशेषकर अमरीका युवाओं को आकर्षित कर अपना सांस्कृतिक वर्चस्व बढ़ा रहा है। वहीं भारतीय संगीत भी भूमंडलीकरण मानकों के सहारे अपनी छवि को चमकाने में लगा है। स्वदेशी वस्तुओं से जोड़कर इसे प्रस्तुत किया जा रहा है।

फिल्मी संगीत के माध्यम से विज्ञापनों को 'सामाजिक गुनगुनाहट' का हिस्सा बनाया जा रहा है तो भक्ति व लोकसंगीत के प्रभाव से अनछुए लक्ष्य वर्ग को आकर्षित किया जा रहा है।

अनेक विज्ञापनों में पार्श्व संगीत होता है जिसमें उत्पादक के गुण अथवा उत्पादन प्रक्रिया की सूचना देते हुए पार्श्व में संगीतमय ध्वनि/धुन के माध्यम से सम्मोहन उत्पन्न किया जाता है ताकि मनुष्य बिना आवश्यकता के भी उत्पाद खरीदने हेतु प्रेरित हो।

इस प्रकार विज्ञापनों में प्रयुक्त संगीत 'बाजारू संगीत' कहा जा सकता है क्योंकि पहले संगीत का आनंद प्राप्त करने हेतु 'संगीत बोध' की जरूरत होती थी आज 'संगीत–श्रवण' की जरूरत है। विज्ञापन के संगीत की यह खूबी है कि वह लाखों–करोड़ों श्रोताओं के पास एक ही क्षण में पहुँच जाता है जिसे संगीत–बोध नहीं है, उसके पास न चयन की आजादी है और न ही दायित्व बोध है, वह संगीत को सुनकर भूल जाता है। मनोरंज से भरपूर किन्तु सौन्दर्य विहीन 'बाजारू संगीत' तात्कालिक जरूरतों से तो जुड़ गया है परन्तु व्यापक सामाजिक–राजनीतिक सरोकारों से मुक्त हो गया है। हम संगीत के सिर्फ उपभोक्ता बन कर रह गए हैं। संगीत के मौलिक सृजन के स्थान पर नकल की प्रथा चल पड़ी। नकल के लिए शास्त्रीय संगीत से लेकर पश्चिमी संगीत के विविध रूपों को ग्रहण किया जा रहा है फलस्वरूप हमारे सांगीतिक बोध, परंपरा और भाषिक संसार से कोई संबंध नहीं रह गया है। संगीत का गुणवत्ता से संबंध टूट गया है। अब हम संगीत को वस्तु की तरह देखने लगे हैं। संगीत जब वस्तु बन जाता है तो उसका विनिमय मूल्य भी होता है तब संगीत का नहीं संगीत के लिए चुकाए गए दाम का महत्व होता है। ये श्रेष्ठ कला को मात्र वस्तु के प्रचार माध्यम में बदल देती है। वर्तमान में संगीत कला की कई हस्तियाँ वस्तु प्रचारक के रूप में अपनी कला को बेच रहे हैं स्व. पं. रविशंकर, उस्ताद जाकिर हुसैन (ताजमहल चाय), कैलाश खैर, स्व. जगजीत सिंह (टोरेक्स खाँसी सीरप) ने विज्ञापन के माध्यम से आम आदमी के मन में बसी उनकी कला की कीमत वसूल ली हैं।

संगीत वर्तमान में आर्थिक शक्तियों के हाथ में है। इसके माध्यम से प्रचारकों का उत्पादित वस्तु को उपभोक्ता तक पहुँचाने की प्रक्रिया को एडोर्नो ने प्रतिगामी श्रवण कहा है, उनके अनुसार – "प्रतिगामी श्रवण वितरण की मशीनरी और खास तौर से विज्ञापन की मशीनरी द्वारा उत्पादन के साथ बँधी होती है। प्रतिगामी श्रवण तभी शुरू हो जाता है जब विज्ञापन आतंक में बदल जाता है तब चेतना के लिए कुछ भी शेष नहीं बच जाता। विज्ञापित सामग्री के सामने चेतना सब कुछ आत्मसमर्पण कर देती है और लोग ऊपर से थोपी हुई सामग्री अपनाकर मानसिक षांति खरीद लेते हैं। सुनने की प्रतिक्रियावादी पद्धति में विज्ञापन अनिवार्य लक्षण अख्तियार कर लेता है।"

विज्ञापन हमारी याददाश्त का हिस्सा बने, हमारी दिनचर्या का हिस्सा बने, इसके लिए विज्ञापन में चिर–परिचित शैली, रूपों, प्रतीकों, भाषा, हाव–भाव और संगीत की धुन का उपयोग किया जाता है। चिर–परिचित तत्वों का विज्ञापन में प्रयोग जितना सर्जनात्मक होगा विज्ञापन उतना ही लोकप्रिय होगा। विज्ञापन में आने के बाद प्रत्येक वस्तु ट्रेडमार्क बन जाती है, वस्तु के मालिक की संपत्ति बन जाती है। इस तरह वस्तु का मालिक भाषा, प्रतीक, शहर, संगीत की धुन आदि का भी मालिक बन जाता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, कि समसामयिक परिवेश में विज्ञापन उपभोक्ता को नवीनतम उत्पादों की जानकारी प्रदान करने के साथ ही दर्शक की विवेक बुद्धि पर आतंक की तरह छा जाने का कार्य करते हैं। संकल्प की शक्ति व विकल्प की स्वतंत्रता को समाप्त करते हैं। इनमें वैश्विक संगीत का प्रयोग कर विश्व बाजार हमारे समक्ष खड़ा किया जाता है और गैर जरूरी वस्तु को खरीदने के लिए हम सम्मोहित होते हैं। व्यावसायिक तकनीक के माध्यम से विज्ञापन कला सहृदय तक

INTERNATIONAL JOURNAL of RESEARCH –GRANTHAALAYAH
A knowledge Repository
Art

पहुँचाती है उसका शोषण करती है और असंतोष का विस्तार करती है अतः भारत जैसे विशाल उपमहाद्वीप में वस्तुओं को संस्कृति का पर्याय बनाने की अपेक्षा भारतीय संस्कृति को विज्ञापन के माध्यम से संप्रेषित करना आवश्यक है। तकनीकी की प्रभावी भूमिका के कारण भारतीय मानदंडों को आकर्षक और चिर–परिचित रूप में प्रस्तुत किया जाए। बहुराष्ट्रीय के स्थान पर राष्ट्रीय प्रतीकों, रूपों, शैली, भाषा, व संगीत की धुन का प्रयोग कर सांस्कृतिक अवरोध को समाप्त करना भारतीय विज्ञापन उद्योग के लिए चुनौती कही जा सकती है।

संदर्भ –

1 *प्रयोजनमूलक हिन्दी – डॉ. संजीव जैन, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, 2009*
2 *डिजीटल युग में मासकल्चर और विज्ञापन, प्रथम संस्करण, जगदीश्वर चतुर्वेदी व सुधा सिंह 2010, अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स (प्रा.) लिमिटेड, दरियागंज, नई दिल्ली*
3 *विज्ञापन कला – मधु धवन, 2010, प्रथम संस्करण, वाणी प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली*